स्वस्ति मंगलपाठ

(चौपाई)

ऋषभदेव कल्याणकराय, अजित जिनेश्वर निर्मल थाय।
स्वस्ति करें संभव जिनराय, अभिनंदन के पूजों पाय।।१।।
स्वस्ति करें श्री सुमति जिनेश, पद्मप्रभ पद-पद्म विशेष।
श्री सुपार्श्व स्वस्ति के हेतु, चन्द्रप्रभ जन तारन सेतु।।२।।
पुष्पदंत कल्याण सहाय, शीतल शीतलता प्रकटाय।
श्री श्रेयांस स्वस्ति के श्वेत, वासुपूज्य शिवसाधन हेत।।३।।
विमलनाथ पद विमल कराय, श्री अनंत आनंद बताय।
धर्मनाथ शिव शर्म[१] कराय, शांति विश्व में शांति कराय।।४।।
कुंथु और अरजिन सुखरास, शिवमग में मंगलमय आश।
मल्लि और मुनिसुव्रत देव, सकल कर्मक्षय कारण एव।।५।।
श्री नमि और नेमि जिनराज, करें सुमंगलमय सब काज।
पार्श्वनाथ तेवीसम ईश, महावीर वंदों जगदीश।।६।।
ये सब चौबीसों महाराज, करें भव्यजन मंगल काज।
मैं आयो पूजन के काज, राखो श्री जिन मेरी लाज।।७।।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्।

परमर्षि स्वस्ति मंगल पाठ (हिन्दी)

(गीतिका)

नित्य अद्‌भुत अचल केवलज्ञानधारी जे मुनी।
मनःपर्यय ज्ञानधारक, यती तपसी वा गुणी।।
दिव्य अवधिज्ञान धारक, श्री ऋषीश्वर को नमूँ।
कल्याणकारी लोक में, कर पूज वसु विधि को वमूँ।।१।।
कोष्ठस्थ धान्योपम कही, अरु एक बीज कही प्रभो।
संभिन्न संश्रोतृ पदानुसारी, बुद्धि ऋद्धि कही विभो।।

१. सुख

ये चार ऋद्धीधर यतीश्वर, जगत जन मंगल करें।
अज्ञान-तिमिर विनाश कर, कैवल्य में लाकर धरें।।२।।
दिव्य मति के बल ग्रहण, करते स्पर्शन घ्राण को।
श्रवण आस्वादन करें, अवलोकते कर त्राण को।।
पंच इंद्री की विजय, धारण करें जो ऋषिवरा।
स्व-पर का कल्याण कर, पायें शिवालय ते त्वरा।।३।।
प्रज्ञा प्रधाना श्रमण अरु प्रत्येक बुद्धि जो कही।
अभिन्न दश पूर्वी चतुर्दश-पूर्व प्रकृष्ट वादी सही।।
अष्टांग महा निमित्त विज्ञा, जगत का मंगल करें।
उनके चरण में अहर्निश, यह दास अपना शिर धरे।।४।।
जंघावलि अरु श्रेणि तंतु, फलांबु बीजांकुर प्रसून।
ऋद्धि चारण धार के मुनि, करत आकाशी गमन।।
स्वच्छंद करत विहार नभ में, भव्यजन के पीर हर।
कल्याण मेरा भी करें, मैं शरण आया हूँ प्रभुवर।।५।।
अणिमा जु महिमा और गरिमा में कुशल श्री मुनिवरा।
ऋद्धि लघिमा वे धरें, मन-वचन-तन से ऋषिवरा।।
हैं यदपि ये ऋद्धिधारी, पर नहीं मद झलकता।
उनके चरण के यजन हित, इस दास का मन ललकता।।६।।
ईशत्व और वशित्व, अन्तर्धान आप्ति जिन कही।
कामरूपी और अप्रतिघात, ऋषि पुंगव लही।।
इन ऋद्धि-धारक मुनिजनों को, सतत वंदन मैं करूँ।
कल्याणकारी जो जगत में, सेय शिव-तिय को वरूँ।।७।।
दीप्ति तप्ता महा घोरा, उग्र घोर पराक्रमा।
ब्रह्मचारी ऋद्धिधारी, वनविहारी अघ वमा।।
ये घोर तपधारी परम गुरु, सर्वदा मंगल करें।
भव डूबते इस अज्ञजन को, तार तीरहि ले धरें।।८।।